वैदिक परम्परा और सूर्योपस्थानम्

डॉ**o** पुनीता शर्मा

वैदिक सन्ध्या पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो सन्ध्या मन्त्रों में से चार मन्त्रों को उपस्थान मन्त्र के रूप में संज्ञा दी गयी है। यद्यपि विद्वत् समाज इन सभी मन्त्रों से पूर्णतया अवगत हो सकता हैं परन्तु वैदिक परम्परा में इनकी सार्थकता हेतु तथा मन्त्र एकाएक स्मरण की परिधि में आ जाएँ, इसके लिए इनके पाठ को यहाँ उल्लिखित किया गया है –

1 ॐ उद्वयन्तंमसस्परि स्वः पश्यंन्त उत्तरम्।
देवम् देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरूत्तमम्। ।[1]

2 ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय्य सूर्यम्।[2]

3. ॐ चित्रम् देवानामुदगादनीक़ं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च स्वाहा।[3]

4 ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयां शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम् अदीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्च शरदः शतात्।[4]

उपरोक्त उपस्थान मन्त्रों में बहुत गम्भीर विषय का प्रतिपादन किया गया है । 'उपस्थान' शब्द उप उपसर्ग में स्था धातु से ल्युट् प्रत्यय लगकर बना है। 'युवोरनाको'[5] सूत्र से यु को अन् होकर नपुंसकलिंग में उपस्थानम् शब्द की निष्पत्ति हुई । जिसका सामान्य अर्थ है – 'पास में बैठना'। एक तो मनन से बना मन्त्र और फिर पास में बैठना, दोनों अलग –अलग धरातल पर होते हुए विरोधाभास को दर्शाते हैं । क्योंकि किसके पास में, क्यों, कहाँ, कब, बैठना ही क्यों, सभी प्रश्न अनुत्तरित ही रह गए । व्याकरण के प्रकृति –प्रत्यय विभाग ने इसके अर्थ को स्पष्ट नहीं किया । इसीलिए तो वेद के अध्ययन के लिए वेदांगों की रचना की गयी । वेद के अर्थों को सदा षड् वेदांगों की सहायता से ही खोलना चाहिए । क्योंकि श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार -

परोक्षवादो वेदो अयं बालानामनुशासनम् ।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं तथा ।।[6]

वेद परोक्षवादात्मक हैं । जिसकी शब्द-रचना कोई और होती है और तात्पर्य कुछ और होता है, उसकी संज्ञा 'परोक्षवाद' की जाती है । उपरोक्त प्रसंग में यह कर्मों की निवृत्ति के लिए कर्म का विधान करता है । उदाहरणार्थ माँ मिठाई का लालच देकर बालक को औषध दे देती है उसी प्रकार वेद स्वर्ग का लालच देकर मनुष्य को श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त कराता है । इसलिए वेद का अर्थ जानना कठिन होता है और वह भी मुख्य

रूप से कलियुग में क्योंकि महर्षि वेदव्यास के अनुसार कलियुग में वेद का अर्थ पुराणों द्वारा प्राप्त होता है । क्योंकि –

- वेद सृष्टि की विद्या है ।
- वेद ज्ञान का मूल स्रोत है ।
- वेद में ज्ञान की प्रत्येक विधा का वर्णन है ।
- वेद लोक और परलोक का साधन है ।
- वैदिक ज्ञान से बाहर दूसरा कोई और ज्ञान नहीं होता ।

परन्तु कर्म रहस्य न जानने के कारण इनकी व्याख्या (Interpretation) गलत दिशा में हो जाती है और फलतः वेद अप्रासंगिक हो जाते हैं ।

अतः उपस्थान का अर्थ 'पास में बैठना'' किसी भी अभिप्राय को स्पष्ट नहीं करता। किसके पास बैठना , क्यों बैठना, किस विधि से बैठना, कहाँ आदि, सभी प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं । पुनः भिन्न –भिन्न आर्यसमाजों द्वारा प्रकाशित संध्योपासना विधि में इन्हे 'सूर्योपस्थानम्' के शीर्षक के अन्तर्गत लिपिबद्ध किया है, जो मन्त्रों के अध्ययन पर संगत नहीं बैठता। लेखिका के मत में मात्र 'उपस्थान मन्त्र'' ही संगति पूर्ण हो सकता है । क्योंकि देवता मात्र सूर्य न होकर अन्य भी बनते हैं। वैदिक मन्त्रों मैं प्रत्येक मन्त्र का एक ऋषि होता है , एक देवता और मन्त्र किसी छन्द में निबद्ध होता है । प्रस्तुत लेख में ऋषि और छन्द को छोड़कर मात्र देवता पर विचार किया गया है ।

महाभाष्य मैं "शब्देन चाप्यधिकृतेन को अन्यो व्यापारः शक्योवगन्तुमन्यदतो योगे योग उपस्थानात्" [7] से उपस्थान का अर्थ हुआ – 'Occurrence' (बारम्बारता) या फिर 'Presence by virtue of अनुवृत्ति' अथवा सामान्य शब्दों में एक ही उच्चारण को बार –बार करना । यथा राम राम राम राम या ॐ ॐ ॐ ॐ , क्योंकि यहाँ स्था धातु ठहरने के अर्थ में प्रयुक्त होती है अर्थात् शब्द के साथ-साथ, बार- बार, ठहर-ठहर कर उच्चारण करना। चूँकि वेद शब्दब्रह्म स्वरूप हैं और उच्चारण पर आधारित हैं। इसीलिए जप विधि विद्यमानता में आई । रामायण का पाठ, दुर्गासप्तशती का पाठ, जपुजी साहेब का पाठ, इसके उदाहरण हैं । यह उपस्थानम् है।

वेद यज्ञपरक है और 'यज्ञम् वै विष्णुः'[8] – श्रुति वाक्यानुसार यज्ञ विष्णु है। मनुष्यों की जिह्वा भगवान् विष्णु की जिह्वस्वरूपिणी सरस्वती मानी जाती है । यही कारण है कि कर्मकाण्ड और पौरोहित्य पद्धति की विद्यमानता अस्तित्व में आई । इस प्रकार कर्मकाण्ड तथा पौरोहित्य के लिए यज्ञ करना भी, दूसरे शब्दों में कर्मकाण्ड मे स्थित होना भी 'उपस्थानम्' है ।

भारत यज्ञभूमि , तपस्थली तथा ज्ञान साधना भूमि है । मनुस्मृति[9] में –

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
सः ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः।।

आदि पद्य में स्थान का अर्थ एक भौगोलिक सीमा है, इसलिए तीर्थ स्थलों पर घूमना, यात्रा करना, वहाँ तप करना, नदियों मै उतरकर स्नान करना आदि भी 'उपस्थानम्' है । इसलिए धर्म के मार्ग पर चलने के लिए तीर्थ स्थल, मन्दिर आदि का निर्माण करना व कराना भी वास्तुशास्त्र की दृष्टि में धर्म है । कुम्भ स्नान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । यह सब भी उपस्थानम् है ।

महाराष्ट्र से लेकर द्रविड़ भारत के अंश में उपस्थानम् को 'arising', 'springing up' या 'coming to pass or an event' के रूप में देखा जाता है । उन्होने उसे 'Mystic Prayer' के स्थान के रूप में जानकर मन्दिर निर्माण की कला को प्रसिद्ध किया । अतः पूजा के स्थान पर जाना भी उपस्थानम् है ।

संस्कृत मै उपस्थानम् का अर्थ 'उसी स्थान पर उपस्थित रहना' (presence), सन्निधि (proximity) तथा समीपता या नजदीकी (nearness) के रूप में माना जाता है ।

किन्हीं दो का साथ- साथ दृष्टिगत होना भी उपस्थानम् है, जैसे 'युगपदाचार्ययोरुपस्थानम् ' – आचार्य का साथ साथ दृष्टिगत होना उपस्थानम् है ।

'सूर्यस्योपस्थानं कुर्वः'- आदि वाक्य बताते हैं की सूर्य की पूजा करना भी उपस्थानम् है । फलतः स्तोत्र साहित्य विद्यमानता मे आया, जहाँ एक स्तोत्र द्वारा अपने इष्ट के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है । यह भी उपस्थानम् है ।

शुक्रनीति (4-111) के अनुसार 'यदि कुर्यूरूपस्थानं वादं तत्र प्रवर्तयेत् ' [10] अर्थात् 'यदि पास में जाओगे तो वाद या तर्क हो जाएगा। इसलिए उपस्थानम् का अर्थ न्याय दर्शन में 'तर्क का जन्म ले लेना ' हुआ ।

रामायण में 'दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः'[11] पदयांश में उपस्थान का अर्थ किसी समानान्तर उपाय को देखकर सादृश्य से दूसरा अर्थ निकालना है । इसलिए उपस्थान का अर्थ हुआ कि किन्हीं उपायों से किसी अन्य अर्थ को निकालना ।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'उपस्थानम्' का अर्थ 'assembly' या 'palace' लिया है । अर्थात् यदि कार्य के लिए किसी उपस्थानम् में जाया जाए तो कार्य सम्भव है ।

मुख्य रूप से उपस्थानम् शब्द के ये 11 अर्थ बनते हैं। गौण रूप से भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है ।

प्रश्न पुनः उठ सकता है कि यदि इन मन्त्रों का एक देवता , भले ही 'सूर्य' मान लिया जाए तो क्या हानि थी, आसान हो जाता । परन्तु नहीं, इससे अर्थ का अनर्थ सम्भव था । क्योंकि –

- सूर्य के पास कोई कैसे स्थान ले सकता है, क्या गर्मी से जल नहीं जाएगा ?
- यदि इसे मन में या हृदय से चिन्तन किया जाए, मान लो तो भी तो सम्भव नहीं । मात्र सूर्य ही क्यों? ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि क्यों नहीं ।

ये चारों मन्त्र यजुर्वेद से लिए गए हैं जिसका मुख्य विषय कर्मकाण्ड है या यह वेद कर्मकाण्ड प्रधान है । यह वेदिक कर्म व क्रियाओं को स्थान व काल के माध्यम से खोलता है यहाँ स्थान का अर्थ space और काल का अर्थ time लेना चाहिए, जिसे आज की Modern Physics में Space & Time Concept कहा जाता है । ऐसा माना जाता है कि मात्र अकेला यजुर्वेद ही पर्याप्त है । मत्स्य पुराण में कहा है कि वेद मात्र एक ही है और आरम्भ में इसका रूप यज्ञात्मक था, इसलिए मात्र यजुर्वेद को ही मानना पडेगा –

एको वेदः चतुष्पादः संह्रत्यस्तु पुनः पुनः।
संक्षेपादायुषश्चैक व्यस्यते द्वापरेष्विह ।। [12]

कूर्मपुराण में भी लिखा है –

एक आसीत् यजुर्वेद्स्तच्चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूत् यस्मिंनस्तेन यज्ञमथाकरोत्।।[13]

इसलिए यज्ञ का स्थूल और सूक्ष्म रूप दोनों ही यजुर्वेद में हैं।

वेद का मूल विषय यज्ञ है, दूसरे शब्दों में वेद यज्ञपरक हैं और यह यज्ञ सम्पूर्ण वैदिक विचारधारा को एक शब्द मैं बताता है जिसकी संज्ञा 'यज्ञ' है । यह विचार उस वट वृक्ष की भाँति है, जिसके पत्ते, शाखाएँ और तना समय के अनुसार वृक्ष को ही घना करते हैं । यह वेद संक्रेन्दित वृत्त (Concentric Circles) के रूप मे जाना जा सकता है । यह किसी भी व्यक्ति के सभी आयामों को एक साथ प्रदर्शित करता है। इन सब मे केन्द्र के रूप मे स्वयं व्यक्ति है फिर उसका परिवार, कुल, ग्राम, देश, सौर ग्रह तथा अन्त मे सभी कुछ काल मे समाहित हो जाता है।

वेद और उपनिषद् अथवा वैदिक विद्या यह मानती है कि यह ब्रह्माण्ड कहीं पर भी टिका हुआ नहीं है। सभी स्वगति से स्वभावानुसार प्रवह वायु द्वारा अन्तरिक्ष मे समान दूरी बनाए हुये अपनी –अपनी गति से चल रहें है।[14] इससे यज्ञ वैयक्तिक स्तर से सार्वभौम स्तर पर आ जाएगा। यह कर्मकाण्ड नहीं है। यज्ञ शब्द यज् धातु से निष्पन्न है तथा निरुक्तकार यास्क ने इसे – 'देवपूजासंगतिकरण' के रूप मे माना है। देवपूजा शब्द मे दो शब्द देव और पूजा हैं। दिव् धातु से निष्पन्न देव शब्द की निरुक्ति – देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा दीपनाद्वा द्युस्थानों भवतीति वा[15]। इसमे दान 10 प्रकार का तथा द्योतन और दीपन एक – एक प्रकार के हैं। अन्य अर्थों की अपेक्षा प्रस्तुत प्रसंग मे देव शब्द द्युति तथा गति अर्थ मे अधिक प्रासंगिक है क्योंकि मन्त्र की व्याख्या सृष्टिपरक है। अँग्रेजी भाषा मे द्युति से अभिप्राय Luminescence तथा गति का अर्थ 1. Knowledge, 2. Motion और Accomplishment है। इसलिए देवपूजा मे दिव् धातु का अर्थ प्रकाश पुञ्ज अथवा प्रकाश किरण ही माना जाना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक जिस 'Black Hole Theory' की चर्चा करते हैं वह भी वैदिक दार्शनिक की दृष्टि में अपवाद नहीं है क्योंकि उसमे प्रकाश प्रकट न होकर अपने स्रोत में ही समाहित रहता है। इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड की कोई भी चीज़ और द्रव्य, भले ही किसी भी रचना और आकार में क्यों न हो, किसी भी अवस्था में क्यों न हो, देव शब्द में ही समाहित हो जाएगा।

देवपूजा में पूजा का अर्थ संगतिकरण है, जो कि ब्रह्माण्ड व सार्वभौमिकता के प्रति समर्पण व आदर को दर्शाता है, जिसका उदय ज्ञान के माध्यम से सम्भव है। इस ज्ञान को ग्रहण करने का प्रथम सोपान विज्ञान है। उपरान्त इससे सृष्टि के सृजनात्मक सिद्धान्त व प्रक्रिया के साथ संगति की जाती है। इसलिए ज्ञान के साथ संगति रखने वाले माता-पिता, शिक्षक, विद्वान, शोधार्थी, ऋषि आदि, साथ ही यदि किसी से कुछ भी सीखा हो जैसे कलाकार, शिल्पकार आदि सब भी देव की परिधि मे ही परिगणित हो जाएंगे। भारतीय परम्परा तो पशु, पक्षी, पुष्प, कीडे आदि सभी से सीखने की परम्परा रखती है। श्रीमदभागवतपुराण में तो अवधूत ने अपने 24 गुरु गिनवाए है।

इसलिए सम्पूर्ण प्रकृति, पुरुष की लय से नर्तन करती है। संगतिकरण मे गति का प्रचलित अर्थ 'Motion' है और करण शब्द 'doing' या 'creating' भाव को इंगित करता है। परन्तु सम् उपसर्ग इस सम्पूर्ण प्रकरण को अपने अर्थ से बदल देता है – यह दो या दो से अधिक के साथ संगति है। यदि इसे सृष्टि प्रक्रिया के साथ संपृक्त करो तो धुन निकलती है, अन्यथा नहीं।

इसी प्रकार दान का अर्थ भी द्रव्य, धन आदि का दान न होकर उदात्त उद्देश्य के लिए समर्पण की भावना है। यदि वैज्ञानिक दृष्टि दी जाए तो –
मैं (I) = द्रव्य (Matter) + ऊर्जा (Energy)
एक गठरी या बंधी हुई पोटली (Bundle) है जो किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं होती। शरीर मे हानि या लाभ होने पर इस 'मै' पर एकान्ततः कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह सृष्टि प्रक्रिया का क्षणिक चरण है, जिसका कोई भी प्रभाव कुल द्रव्यमान पर नहीं पड़ता। यह मैं (I) जीवन के नानाविध परिणामों को उत्पन्न करता है । शरीर पर मात्र इसके प्रभाव होते हैं । भावनायें शेष रह जाती हैं और मानव का तन्त्रिका तन्त्र उन्हे स्मृति के रूप मे सुरक्षित कर लेता है । इसलिए आधुनिक शिक्षा पद्धति जहाँ मैं (I) को केन्द्र में रखकर बनाई गयी है वहाँ वेद मैं (I) को ब्रह्माण्ड में समर्पित करके मात्र सृष्टि को देखता है, इसलिए वेद में पुरुष ही सृष्टि को करने वाला है।

इस सृष्टिपरक़ यज्ञ के साथ निकटता, समीपता, सन्निधि, काल और दिक् के साथ सम्बन्ध के साथ सायुज्य करना या फिर बैठाना अथवा संगतिकरण ही उपस्थानम् है।

इन चार मन्त्रों मे सन्ध्या की प्रयोग विधि में मन्त्रों का क्रम कुछ परिवर्तित कर दिया गया है। यदि इसे मूल क्रम मे देखा जाए तो ॐ उदुत्यं जातवेदसम् (7-41) है, पुनः यह 33 वें अध्याय का 31 वाँ मन्त्र है, जिसका सामान्य अर्थ है – उदय होते हुये अग्नि देवता को देखने के लिए, सूर्य संसार को देखने के लिए किरणें धारण करते हैं । इस मन्त्र के उपरान्त ॐ चित्रम् देवानामुदग़ादनीक़ं (7-42) मन्त्र है जिसका अर्थ है – विचित्र देवताओं के अच्छी तरह प्राप्त या उदय होता हुआ यह सेना या समूह (इन्द्रियाँ) नेत्र या आँख, सूर्य का एक रूप, जल, अग्नि के प्रकृष्ट रूप मे फैली हुई द्युलोक, पृथ्वी लोक व अन्तरिक्ष लोक में 'सूर्य जगत् की आत्मा है' , इस स्थावर और जंगम परक देवता को समर्पण हेतु स्वाहा । इन दो मन्त्रों

के उपरान्त यजुर्वेद के 35 वें अध्याय का 14 वाँ मन्त्र है - ॐ उद्वयन्तंमसस्परि । यद्यपि सन्ध्या मन्त्रों में यह पहले लिखा है क्योंकि यह सन्ध्या मन्त्र आर्यसमाज ने संकलित किए हैं, जबकि वेद में इनका क्रम भिन्न है। मूल पाठ का सम्मान करते हुए, चूंकि वह अधिक सार्थक है उसी क्रम में मन्त्र का अर्थ बनता है – हमने अन्धकार के ऊपर सुखप्राप्ति पूर्वक देखते हुए उत्तर दिशा या फिर भू से ऊपर ज्योति वाला देव (आत्मा), दिव्य गुणो से युक्त प्राणशक्ति सूर्य को प्राप्त होते हैं, यह उत्तम ज्योति है । यजुर्वेद का यह अध्याय मृत्यु का वर्णन करता है । यह भयावह नहीं है, मात्र वस्त्र परिवर्तन है। यजुर्वेद के 35 से 39 अध्याय में मृत्यु, ऊर्ध्व गति, प्राण आदि का वर्णन है । तभी अन्तिम जो 40 वाँ अध्याय है , उसका देवता आत्मा या ब्रह्म बन सकता है और वही ईशावास्योपनिषद् है, तभी तो इस अनुभव की सम्भावना बन पाएगी –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[16]

अन्तिम मन्त्र ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् - में जीवन के प्रति प्रार्थना है।

समस्त चार मन्त्रों में सूर्य के साथ उपस्थापन करना है, अनुभव करना है। इस अनुभव को कैसे किया जा सकता है, इसकी प्रक्रिया भी विचारणीय है। पहले ब्रह्माण्ड के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाये – सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च के आधार पर इस समूचे ब्रह्माण्ड की आत्मा सूर्य है तथा 'गच्छतीति जगत्' – जो जाता है वह जगत् है या फिर जो परिवर्तित होता रहता है उसे जगत् कहा जाना चाहिए। इस आधार पर मानव, पशु, पक्षी, पेड़ –पौधे, समूचा वनस्पति जगत् जाता रहता है और परिवर्तनशील है, मात्र सूर्य स्थिर है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता है, शेष राम, कृष्ण, आदि अवतार परोक्ष होने के कारण कल्पनारूप में भी जाने जा सकते हैं । ऐसा सूर्य के विषय में नहीं कहा जा सकता क्योंकि राम, कृष्ण आदि अवतारों में तर्क, वितर्क और कुतर्क की सम्भावना सम्भव है जबकि सूर्य प्रतिदिन प्रत्यक्ष दिखाई देता है । सम्पूर्ण सौरमण्डल का केन्द्र बिन्दु यही सूर्य है। शेष सभी ग्रह अपने- अपने ग्रह, पथ या कक्षा में चक्कर लगाते रहते हैं, चन्द्रमा को छोड़कर। क्योंकि चन्द्रमा उपग्रह होने के कारण पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर लगता है, यह पृथ्वी के सबसे नजदीक है। इसका प्रकाश सूर्य के कारण है । चन्द्रमा सूर्य के आसपास भ्रमण करते हुए घटता बढ़ता है ।

इसलिए पन्द्रह – पन्द्रह दिन का एक चक्र (Cycl e) बनता है । यदि सूक्ष्मता से गणना की जाए तो यह सटीक पन्द्रह – पन्द्रह दिन का न होकर कुछ कम या अधिक होता है क्योंकि नक्षत्र चक्र में 27 नक्षत्र है तथा अभिजित् नक्षत्र का मान कम होने से इसे नहीं गिना जाता। इसलिए चान्द्र मास 27 या 28 दिन का होता है । यही दर्श और पौर्णमास का कारण है। इसी कारण से

ज्योतिष शास्त्र को वेदपुरुष की आँख माना जाता है और यह शास्त्र प्रत्यक्ष गिना गया – "प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ" [17]। यह कालपरक या कालविधान शास्त्र भी माना जाता है।

सूर्य, चन्द्रादि को केन्द्र में रखकर ज्योतिष शास्त्र में जो गणनाएँ की गईं उन्हे खगोल शास्त्र कहा जाता है । इसलिए ज्योतिष गणितीय प्रक्रियाओँ पर आधारित है जो की सृष्टि की गहराइयों तथा उनकी गणना में काम आती हैं । खगोलीय घटना में परिवर्तन कब होगा तथा उस पर आधारित क्या परिणाम हो सकते हैं, पुनः मानव जीवन कितना प्रभावित होगा – इन सबका सटीक आकलन इस शास्त्र की मुख्य विषय-वस्तु है । हमें क्या करना चाहिए, ताकि हमारा इस सृष्टि में किसी प्रकार का योगदान हो सके, यह वैदिक ऋषि का मुख्य प्रयोजन रहा है। इसमे सबसे प्रसिद्ध शास्त्रीय कर्म है – तीन अर्घ्य देने की प्रथा, इसे दूसरे शब्दों में तीन संधियों में जल अर्पण करने की प्रथा। इसके स्पष्टीकरण के लिए मैं कार्तिक स्नान का प्रसिद्ध उदाहरण लूँगी । इस कार्तिक स्नान के अन्य नाम गंगा स्नान, नदी- स्नान भी हैं, जिसमे नदी में खड़े होकर सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। इसका कारण भारत देश का प्रकृति के प्रति प्रेम है क्योंकि यह देश सदा से ही प्रकृति का उपासक रहा है, जो कि विपरीत शिक्षा पद्धति के कारण आज धूमिल हो गया है।

नदियों को जीवित ऊर्जा युक्त बहता हुआ जल का स्रोत माना जाता है तथा खेतों में कच्ची मिट्टी होने के कारण पानी को उस ऊर्जा को बचाकर रखने की क्षमता बनी रहती है । आजकल बनी हुई इमारतों में न तो यह सम्भव है और न ही उपयोगी। क्योंकि यह प्राकृतिक शृंखला को तोड़ता है।

तैत्तिरीय आरण्यक[18] में एक कहानी आती है कि – एक जाति मैन्देह राक्षस है जो कि अरूण (जहाँ से सूर्य लाल रँग का निकलता है) टापू (i sl and) पर रहती है । वह रोज़ सुबह सूर्य के उदय होने के साथ ही निकल आती है और स्पेस को जीतना चाहती है, परन्तु यह तभी सम्भव है, जब वह सूर्य को विनष्ट कर सके। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जातियाँ या गण तीन होते हैं - देव, मनुष्य और राक्षस। जिनमे से देव गण उन्हे माना जाता है जो कि भले ही आप उनका बुरा करें परन्तु यह आपका अच्छा ही करते हैं । दूसरे मनुष्य गण के लोग अच्छा करने पर अच्छा और बुरा करने पर आपका बुरा करते हैं । तीसरे राक्षस लोग चाहे आप उनका कितना भी अच्छा कर लो, वह आपका सदा बुरा ही करते हैं । इसलिए ये राक्षस गण सूर्य को नष्ट करना चाहते हैं क्योंकि उन्हे सूर्य की उन्नति अच्छी नहीं लगती, वे उसे नष्ट करना चाहते हैं । इस सूर्य को बचाना हम सबका उत्तरदायित्व है क्योंकि सूर्य हमारा पिता है, इस पृथ्वी ग्रह पर जीवन मात्र सूर्य के कारण है, इसलिए –

प्रथम अर्घ्य – असीमित बलशाली होता है। यह स्वयं के लिए लाभकारी होता है। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार यह सूर्य के वाहन घोड़ों को नष्ट करता है जो की सात किरणें हैं, या सात वर्ण (रँग) हैं । ये सात ग्रहों के दोषों को समाप्त करने की सामर्थ्य रखता है । राहु-केतु को इनमे न गिनने का कारण इन दोनों का छाया ग्रह होना है। कृषि का सूर्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण खेतों को सुबह के समय सींचा जाता है ।

द्वितीय अर्घ्य – मैन्देह राक्षसों के अस्त्र- शस्त्रों को समाप्त करता है, यह दोपहर है इसलिए शास्त्र में दिवाशयन का निषेध किया जाता है, मात्र झपकी ली जा सकती है । दिवाशयन से कार्य में लगने के कारण पित्त और कफ वर्धित होते हैं, इसलिए द्वितीय अर्घ्य विशिष्ट है ।

तृतीय अर्घ्य – यह अर्घ्य राक्षसों को स्वयं ही समाप्त कर देता है ।

चूँकि ब्रह्मा ने उन राक्षसों को वाग्दान दिया हुआ है कि वह नष्ट होकर भी फिर पैदा होंगे, इसलिए अगले दिन वह फिर चल देते हैं ।

पर्यावरण के अनुसार भी ये मन्त्र महत्वपूर्ण हैं। नदियाँ अपने स्रोत से बहती रहती हैं, हम उसमे खड़े होकर उसी जल को उठाकर अर्घ्य देते हैं अर्थात् नदी का पानी अपने हाथ से उठाना और फिर ऊपर करके उसी नदी में फ़ेंक देना । यह क्रिया नदी के सामान्य बहाव में विक्षोभ पैदा करती है । इसे यदि लौकिक उदाहरण से समझा जाए तो अधिक स्पष्ट होगा । माँ द्वारा बच्चे को दूध गर्म करके फिर बार –बार फेंट कर दूध को अधिक लाभकारी बनाया जाता है । इसी प्रकार नदी के विद्युत चुम्बकीय (electromagnetic) स्रोत में क्षोभ पैदा कर हमारी भाप की प्रक्रिया अधिक सुकर होती है जिससे बादलों का निर्माण होता है । बादल वृष्टि का कारण बनते हैं । वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है । इसलिए सूर्य पृथ्वी पर अंकुरोत्पत्ति (seedling) का कारण व द्योतक है। अन्न ही पृथ्वी पर जीवन का कारण है । वेद में ब्रह्म को – "अन्नं वै सः" कहा जाता है । उद्भिज्ज योनि अर्थात् वनस्पति जगत् में भी यही प्रक्रिया है, इसलिए लोकाचार में कृषि कर्म को उत्तम व्यवसाय कहा गया है जो कि इहलोक और परलोक दोनों में पुण्यकारी है । इससे पृथ्वी पर न तो ग्लोबल वार्मिंग (global warming) की सम्भावना रहती है और न ही पानी की कमी या जलाभाव ।

अब व्यष्टिपरक (microcosm) अर्थ पर विचार किया जाए तो इन मन्त्रों को अपने पर घटित किया जाए तो पहले दो मन्त्र ॐ उदुत्यं जातवेदसम् – (7-41) और ॐ चित्रम् देवानामुदगादनीकम् – इस भौतिक शरीर के लिए हैं तथा ॐ उद्वयन्तंमसस्परि स्वः (35-14) मृत्युपरक है तथा अन्तिम ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। (36-24) में स्वस्थ रहने की कामना है।

इस शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं । जो कि सांसरिक बाह्य ज्ञान, जो कि इंद्रियों जनित है उसे प्राप्त करने में सहायक हैं , यथा चक्षु से देखना , श्रोत्र से सुनना , जिह्वा से स्वाद , नासिका से गन्ध तथा त्वचा से स्पर्श ग्रहण करती हैं । ये पांचों इंद्रियाँ पाँच महाभूतों से संबन्धित हैं , त्वचा – पृथ्वी , चक्षु – अग्नि , कान – आकाश , रसना – जल और नासिका – वायु को द्योतित करती है । इस सांसारिक

प्रक्रिया में मन्त्र ॐ उदुत्यं जातवेदसम् – (7-41) – में 'उदय होते हुये जातवेदा को देखने के लिए कहा है'। यहाँ जातवेदा का अर्थ अग्नि, ऊर्जा अथवा energy है, जिसका हम इस संसार में भोग करते हैं । अगले मन्त्र ॐ चित्रम् देवानामुदगादनीकम् में – इंद्रियों का यह समूह द्युलोक (जहाँ सूर्य आदि चमकते हैं), पृथ्वी लोक (जिस पर हम रहते हैं) व अन्तरिक्ष लोक (इसे space कहते हैं, जहाँ प्रवह वायु के कारण कोई गति सम्भव नहीं, यह जड़ता की स्थिति है) में फैला है ।

अगला विशेषण 'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने' मन्त्र में आया है । सामान्य अर्थ में इसे मित्रावरुण और अग्नि कहा जाता है । मित्रावरुण देवता वेद में द्विवचन में है । ऋग्वेद के (1-2-7) मन्त्र में इस देवता के स्वरूप को निम्न विशेषणों से स्पष्ट किया गया है जो आज की वैज्ञानिक भाषा में खरा उतरता है –
पूतदाक्षम् मित्रम् – Hydrogen which is expert in cleansing.
दिशादसं वरुणञ्च – Oxygen which eats away.
हुवे – by rust formation
घृताचीं धियां साधनता – Both of them accomplish the creation of water
संस्कृत साहित्य में उपलब्ध रसायन विज्ञान की पुस्तक 'रसजलनिधि' में मित्रम् का अर्थ Hydrogen है और इसका विशेषण पूतदाक्षम् इसे पवित्र करने के अर्थ में है – 'which purifies' यह हाइड्रोजन का विशिष्ट गुण है तथा दूसरी ओर आक्सीजन किसी भी धातु को जंग खाया हुआ (Rusty) कर देती है । इसीलिए वरुण को मन्त्र में 'रिषादसम्' कहा है क्योंकि वरुण इस जंग को उत्पन्न करने का कारण है (Oxygen which causes rust), क्योंकि 'रिष्' धातु नष्ट या हानि पहुंचाने के अर्थ में है । मनुष्य का मित्रावरुणौ के चक्र में फँसने का मूल कारण मनुष्य के पाञ्चभौतिक शरीर में 72% पानी का होना है । अध्यात्म विद्या में पानी को स्मृति संवाहक (Memory Carrier) माना जाता है जो की स्मृतियों को अपने साथ लेकर चलता है, इसलिए इस परम्परा में सर्वप्रथम कुम्भ पूजा या जलपूजा का विधान है । समस्त इंद्रियों का सेना समूह जहाँ से भी कुछ मिलता है, उसे अपने ऊपर लाद लेता है । उसे उसकी आवश्यकता हो या न हो , वह उसके पीछे जुड जाती है । इस प्रकार यह शरीर कई प्रकार की स्मृतियों का एक बण्डल बन जाता है । यह कई प्रकार की होती हैं जैसे विकास-क्रम स्मृति, आनुवांशिक स्मृति, आणविक स्मृति, चेतन स्मृति, अवचेतन स्मृति आदि । यदि मानव कुछ देर के लिए इस स्मृति को भुला दें तो शुद्ध चैतन्य जाग्रत किया जा सकता है । इसलिए मन्त्रों में इन सबके केन्द्र में स्थित सूर्य को 'अग्ने' शब्द से सम्बोधन किया जाता है क्योंकि यह मानव को स्मृति के वातायन से परे करती है कि मनुष्य स्मृति से परे है । इस सम्पूर्ण जगत् की आत्मा सूर्य है – 'सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च' ।

सूर्य ही आत्मा है क्योकि –
आत्मा शब्द आत्मन् का प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप है, जिसका अर्थ 'मैं ' (self) है ,
ज्योतिष शास्त्र में 'आत्मा रविः' का प्रयोग मिलता है ।

इसलिए जन्म के समय पर राशि चक्र की जो राशि पूर्व दिशा में लगी होती है, वह लग्न कहलाती है । इसी लग्न के आधार पर जन्म कुण्डली में जातक के शारीरिक स्थिति व गठन का विचार किया जाता है । मूलतः तो लग्न ही समूचे व्यक्तित्व का परिचायक बन जाता है ।

इस वर्तमान जन्म का केन्द्र बिन्दु नाभि है । निर्देशांक ज्यामिति (Coordinate Geometry) के अनुसार यह नाभि मेरुरज्जु (रीढ़ की हड्डी या back bone) के सामने वाले भाग में रहती है । यह मेरु रज्जु निर्देशांक ज्यामिति का क्षैतिज अक्ष (Horizontal Axis) है। इसलिए सन्ध्या काल में इसको सीधा रखकर बैठना जहाँ एक तरफ शारीरिक दृष्टि से लाभकारी था क्योंकि सभी कुछ इसके माध्यम से ही सम्भव हो पाता है तो दूसरी ओर तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) के लिए और भी अधिक उपयोगी । यह कुछ एकत्र करके नहीं रखता परन्तु इसके बिना हमारा दायाँ और बाँया मस्तिष्क का भाग कुछ भी संञ्चित नहीं कर सकता, इसको लौकिक जगत् में माइक (mike), तारें (wires) तथा sound system से समझा जा सकता है । यदि कोई इस ध्वनि यन्त्र प्रक्रिया को ठीक से समझता है तो इसका उत्तम प्रयोग कर सकता है, अन्यथा सभी कुछ उसके लिए व्यर्थ है ।

उपस्थान मन्त्रों की समूची प्रक्रिया साधक या मानव को धर्म पर टिकाने के लिए सहायक है । इसलिए 'ॐ उद्वयन्तंमसस्परि स्वः-' में मृत्यु के उपरान्त पहुँचे हुए उस सूक्ष्म शरीर / भाव शरीर का वर्णन है । यजुर्वेद का 35वाँ अध्याय पूरी तरह मृत्यु पर केन्द्रित है, जिसमे मन्त्रों की संख्या 14 है । 13वाँ मन्त्र – "अनड्वानहमन्वारभामहे सौरभेयँ स्वस्तये" – में सुरभि पुत्र वृषभ की मंगल के निमित्त स्पर्श की कामना की गयी है । शिवालयों में भगवान् शिव के सम्मुख स्थापित वृषभ साक्षात् धर्म है तथा उसका प्रतीक पुराणों के आधार पर वृषभ है यह भी पूर्णतया वैज्ञानिक है परन्तु विस्तार भय से यहाँ इसका विवेचन सम्भव नहीं । इस वृषभ की माता सुरभि गौ है इसलिए भारतीय संस्कृति में गौ पूजनीय है । इसी अध्याय के 3रे मन्त्र – 'विमुच्यन्तामुस्त्रियाः' में 'बैलों को हल से अलग किया जाए' का अर्थ मृत्यु परक है जहाँ हल का चित्र हँसुली (Collar Bone) से मेरुदण्ड का अलग होना है जिसे लोकाचार में 'आत्माराम' कहा जाता है । लेकिन जिन प्राणियों ने हल को जोतते हुये गौ की पूंछ को पकड़ा है तथा अग्नि की उपासना की है , उसको कोई नहीं हरा सकता । यहाँ -

- गौ की पूंछ पकड़ना – धर्म पकड़ना या धर्मानुसार कार्य है।
- अग्नि की उपासना – श्रम करना या फिर कर्म में धर्म को धारण करना अर्थात् कोई भी कर्म धर्मानुसार करना है ।
- ऋत्विजों में दक्षिणास्वरूप धन – मात्र धर्मानुसार अर्जन करना है और अर्जित भाग का धर्मानुकूल वितरण करना है ।

तभी पृथ्वी उसे मुँहमाँगा खजाना देती है । इसी का नाम जीवन की सार्थकता है । इस कारण जीवन को जीने का दृष्टिकोण 'ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्' में सौ वसन्तों को जीवन की आनन्द की गहराइयों तक जीना है । इसलिए वेद के अनुसार 1008 पूर्णिमा तक जीने तक एक चक्र सम्पूर्ण हो जाता है ।

इस शोध पत्र के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय वैदिक संस्कृति सूर्य का उपस्थानम् करती है । क्योंकि यह सूर्य ही हमारी आत्मा है शेष सब स्मृतियाँ हैं , इसलिए इस संस्कृति में जीवन का आरम्भ कुम्हार से और सामान्यतः समस्त पूजायें कुम्भ-पूजा से आरम्भ होती हैं । उदाहरण के रूप में विवाह का शुभारम्भ कुम्हार की चाकपूजा से तथा उपरान्त कुम्भपूजा (लोकाचार में घड़े भरना) की जाती है । दुर्गापूजा आदि में भी जलकलश स्थापन सर्वप्रथम किया जाता है । इसी प्रकार अन्त्येष्टि में कुम्भ या घड़े को फोड़ देना व आत्माराम को जल में प्रवाहित कर देना, उस पूर्व जीवन को गति देने जैसा है । शास्त्रनुसार यह अगले जीवन की शुरुआत है । यह जीवन जिन अस्थियों (स्था - ठहरना) पर आधारित था , वह स्मृतियों को संवहन करता हुआ पानी के साथ उपजाऊ होता है और फिर नया रूप धारण कर लेता है । यही सूर्य उपस्थान है ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

सन्दर्भ सूची

1. यजुर्वेद 35-14
2. वही 33 – 31
3. वही 7 -42
4. वही 36 -24
5. युवोरनाको (7-1-1), लघुसिद्धान्त कौमुदी – व्याख्याकार & सम्पादक – धरानन्द शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1991
6. श्रीमद्भागवतपुराण 11 -3 -44, गीता प्रैस, गोरखपुर, आठवाँ संस्करण
7. पतञ्जलि कृत महाभाष्य, अनुवादक एवं विवरणकार चारुदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, संवत् 2025
8. ऋग्वेद मण्डल – 1-154—1, https://instapdf.in/rigveda/
9. मनुस्मृति (2-23), https://archive.org/details/ManuSmriti_201601/mode/2up?q
10. शुक्रनीति (4-111), विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या सहित, व्याख्याकार – ब्रह्मशंकर मिश्र , चौखम्भा संस्कृत सिरीज़ ऑफिस , वाराणसी , 1968
11. वाल्मीकि रामायण https://www.valmikiramayan.net/
12. Matsya Mahāpurāṇa : an exhaustive introduction, Sanskrit text, English translation, scholarly notes and index of verses. Kanhaiyālāla Jośī (1st ed.). Delhi : Parimal Publications. 2007. ISBN 81-7110-306-5. OCLC 144550129. Introduction.
13. https://archive.org/details/HindiBookKurmaPuranByGitaPress
14. The Súrya-Siddhánta, (12-53) an antient system of Hindu astronomy ed. FitzEdward Hall and Bápú Deva Śástri (1859). https://archive.org/details/Bibliotheca_Indica_Series
15. The Nirukta of Yaskacharya, edited with Durga Commentary by R. G. Bhandarkar, Bombay Sanskrit & Prakrit Series, 1942. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.485860
16. ईशावास्योपनिषद् – 1 https://shlokam.org/isha/
17. विद्यापीठ पंचाङ्ग ,पृष्ठ – 2 , श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय , दिल्ली , 2021-22
18. https://archive.org/details/taittiriya/taittiriya_aranyaka_bhaskara_01/page/n0/mode/2up